पत्र

रचना वार्षिकी की सूचना

देश की सुरीली धड़कन पर आधारित रचना वार्षिकी

अक्षरपर्व की जून में प्रकाशित होने वाली रचना वार्षिकी का अंदाज इस बार कुछ सुरीला होगा। अपनी अनूठी संगीतमय प्रस्तुति के कारण देश भर में लोकप्रिय विविध भारती ने 61 बरस पूरे कर लिए हैं। तीन अक्टूबर 1957 ही वह तारीख थी, जब विविध-भारती का आगाज शील कुमार शर्मा की आवाज में हुआ था। उन्होंने कहा था, 'यह विविध-भारती है, आकाशवाणी का पंचरंगी कार्यक्रम' पंचरंगी यानी पांच ललित कलाओं- गीत, संगीत, नृत्य, नाट्य और चित्र का समावेश। किसी भी रेडियो चैनल का सफलतापूर्वक साठ बरस से ज्यादा का सफर तय करना, यह बताता है कि वह आम जनजीवन से कितना जुड़ चुका है। देश में प्रसारण इतिहास की यह एक अहम घटना है। जिसमें सभी के अपने-अपने अनुभव हैं। विविध भारती ने आधी सदी से ज्यादा की अपनी सक्रियता के दौरान अपनी खास संस्कृति रची है, अपना मुहावरा गढ़ा है और बदलते वक्त, श्रोताओं और जरूरतों के मुताबिक खुद को ढाला है। अक्षरपर्व की रचना वार्षिकी में विविध भारती और रेडियो के बहुआयामी पहलुओं पर चर्चा होगी। पाठक, लेखक विविध भारती, आकाशवाणी या रेडियो सीलोन, या अन्य प्रसारणों से जुड़े अपने अनुभव, विचार, संस्मरण हमारे साथ साझा करें, हम आभारी रहेंगे। रचना प्रेषण की अंतिम तिथि 15 मई है। रचनाएं डाक से निम्न पते पर भेजें-

506, आईएनएस बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली-110001

आप ई मेल से भी रचना भेज सकते हैं

E-mail: aksharparv@gmail.com

- संपादक

जनवरी अंक में अश्वनी कुमार दुबे ने जहां राजनीतिज्ञों के पाखंड का खुलासा किया है वहीं प्रमिला केपी ने साहित्यिक दुनिया में झेल रही कुरुपता पर बड़ी बेरहमी से कलम चलाई है। इसमें बहुत कुछ सच्चाई है। जिस साहित्य को हम पवित्रता की श्रेणी में रखते रहे हैं, वह आज अपवित्रता और प्रदूषण का शिकार है। स्वार्थों ने सबको मटमैला कर दिया है। डॉ. पुनीत कुमार ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अच्छा विश्लेषण किया है। अभिव्यक्ति में मर्यादा अनिवार्य है चाहे किसी पक्ष की हो।

कहानियों में बीना श्रीवास्तव की कहानी 'मकुनी' मन को छूती है। आज नई पीढ़ी पैसे के लोभ में माता-पिता और मातृभूमि को महत्व नहीं देती जबकि पुरानी पीढ़ी का मातृभूमि या स्वदेश के लिए अनुराग स्वाभाविक है। मकुनी एक कर्मठ स्त्री है जो संघर्ष का जीवन जीती है, पर बेटे की जिद के आगे विवश है। रमजान चाचा का आचरण मानवता का उत्तम उदाहरण है। अनवर हुसैन की कहानी 'जीव-हत्या' बेटे की चाहत में की जा रही भ्रूण हत्या का सत्य सामने रखती है।

सुनील बागवान का लेख पढ़कर मुझे अपने गांव का मुहर्रम का त्यौहार याद आ गया। बचपन की बात है। मेरे गांव में मुसलमानों के चार-छः घर ही थे। वे भी अत्यंत गरीब। अपनी विवशता में उन्होंने एक बार ताजिया न निकालने का निश्चय किया। जब उसका पता गांव के प्रमुख व्यक्ति श्री गौतम को पता चला तो उन्होंने उन्हें बुलाया और ताजिया न निकालने का कारण पूछा। मुस्लिम बुजुर्ग ने ये कारण गिनाये- हम संख्या में कम हैं, ताजिया पकड़ने, बाजा बजाने, हाय हुसैन कहने, लुभान जलाने, मशाल पकड़ने के लिए कई आदमी चाहिए। दूसरा- हमने इस साल ताजिया नहीं बनाया है और दूसरे शहर से खरीदकर लाने को हमारे पास रुपया नहीं है। तीसरा- गांव की गलियों में कई पेड़ ऐसे हैं जिनसे ताजिया निकालने में कठिनाई होती है।

गौतम जी ने पूछा कि अगर समस्याओं का समाधान हो जाए तो ताजिया निकालोगे? मुस्लिम परिवारों ने सहमति दी। गौतम जी ने तत्काल अपेक्षित राशि मुहैया कराई और कहा कि गांव की परंपरा चलनी चाहिए। तुम लोग मन छोटा न करो। हमारे बच्चे आपके जुलूस में शामिल रहेंगे। बाजा बजाएंगे। ध्वज लेकर चलेंगे। मैं साथ में रहूंगा। पेड़ों से कोई दिक्कत न होगी। उस वर्ष ताजिये का जुलूस जिस तरह निकाला गया था। मुझे वह दृश्य आज भी याद है। गांव में आज भी मुसलमान रामलीला में और हिन्दू परिवार उनके मुहर्रम में सहयोग करते हैं जिससे परम्परा जीवित है।

-डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया
ए-7, फारचून पार्क, जी-3
गुलमोहर, भोपाल (म.प्र.) 462039